International Journal of Recent Research and Review, Vol. XIII, Issue 1, March 2020
ISSN 2277 – 8322

'चरैवेति–चरैवेति' संस्कृति का मूल मंत्र : एक चिंतन

डॉ. शिप्रा पारीक
सहायक आचार्य, संस्कृत
एस.एस. जैन सुबोध महाविद्यालय, जयपुर
E-mail : shipra.p.71@gmail.com

सारांश **– भारतीय संस्कृति उदात्त संस्कृति है। ज्ञान की पराकाष्ठा के कारण भारत विश्व गुरु की उपाधि से विभूषित है। सनातन परम्परा यहाँ कर्म करते रहो, सकारात्मक कार्य करते रहो, यही ऊर्जापरक ओजस्वी घोष संस्कृति के हर घटक में परिव्याप्त है। प्रकृति भी परोपकार के साथ सदैव ''चरैवेति–चरैवेति'' यह मंत्र हमारे लिये रामबाण है, जिसने इसका मंथन कर जीवन में अपनाया और इसको आधार बना जीवन जीया, वही आज सफल है। वर्तमान भौतिक युग अन्धानुकरण की दौड़ का हो रहा है, ऐसे परिदृश्य में हमें सकारात्मक पहल के साथ कार्य करते हुये ही बढ़ना है। यही हमारा मूल चिन्तन है।**

मुख्य शब्द **– जीवन, कर्त्तव्य, अमूल्य, परमशक्ति, असीम, गतिशील, प्रकृति, परोपकार।**

I. प्रस्तावना

मानव का जीवन बहुत अमूल्य है। धरती पर मानव सदैव श्रेय कर्म करके अपनी गरिमामय उपस्थिति उस असीम के आगे दर्ज कराता है। चहुँ ओर प्रकृति जो पल्लवित–पुष्पित है वह हमें सदैव यही शिक्षा देती है कि जीवन में हर क्षण पर उपकार के भाव से खिलते रहो। हमारी संस्कृति का परोपकारमय भाव ही हमें सिरमौर बनाता है। ऋषियों की अटूट धारणा, समत्व भाव में रही है इसी समत्व भाव को सक्रिय एवं मूर्त रूप देने के लिये उन्होंने ''चरैवेति–चरैवेति'' इस मूल मंत्र को क्रियान्वित किया। यदि सम्पूर्ण संसार में इस भाव के जागरण का बिगुल बज उठे तो यह धरती ''देवत्व'' रूप से निखर उठेगी।

जीवन चलने का नाम है। प्रकृति के प्रत्येक जीवित घटक में हम इस गति को देखते हैं। सूर्य व चन्द्रमा अपनी धुरी पर हमेशा गतिशील रहते हैं जिनके कारण पूरी सृष्टि का चक्र चल रहा है। नियम से दिन होता है फिर रात आती है, ऋतु चक्र का भी क्रम जारी रहता है और धरती पर जीवन चलता रहता है।

महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में उल्लेख मिलता है –

भानुःसकृत् युक्त तुरंग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।

शेषः सदैवाहित भूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः। [1]

नदियाँ सहज गति में अपने उद्गम स्थल से प्रवाहित होती है और उसके रास्ते भी छोटे–बड़े सभी नद–नाले मिलते जाते हैं और वह उस वृहद् नदी में मिल जाते हैं तथा जीवों की प्यास बुझाते हुये, धरती को शस्य–श्यामल रूप देते हुये वह नदी सागर में मिल जाती है। वही सागर सूर्य के ताप से तपकर वाष्प को आसमान में उड़ाता है और वह वाष्प बादल बनकर पर्वतों से टकरा कर बारिश बन वनभूमि को सिंचित करते हैं और चारों ओर हरियाली, शीतलता और जीवन का वरदान बरसाकर पुनः सागर में जा मिलते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि का चक्र एक दिशा में गतिशील है।

आचार्य मणिभद्र ने हरिभद्र कृत षड्दर्शन समुच्चय की टीका में पुरातन आचार्यों का निम्न श्लोक उद्धृत किया है –

श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्त्तव्यः पुनरार्हतः।

वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः।।[2]

बौद्ध धर्म श्रवण प्रधान है, जैन–धर्म कर्त्तव्य–प्रधान। तात्पर्य यह है कि धर्मों में पारस्परिक विरोध नहीं है कोई धर्म सुनने में श्रेष्ठ है, कोई कर्त्तव्य में, तो कोई व्यवहार में और कोई ध्यान के लिये। शिवमहिम्न स्तोत्र में लिखा है –

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पश्यमिति च।।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथजुषां

नृणामेको गम्यस्तवमसि पयसामर्णव इव।।[3]

तीन वेद, सांख्य, योग, शैव तथा वैष्णव ये सभी मत अपनी–अपनी दृष्टि से विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। सबने अपनी–अपनी विभिन्न रुचियों के अनुसार सरल एवं वक्र मार्गों का अवलम्बन किया है। जैसे विभिन्न मार्गों से प्रवाहित होने वाली नदियाँ अन्त में एक ही समुद्र में प्रवेश करती है, इसी प्रकार विभिन्न दार्शनिक धाराएँ एक परमशक्ति के साथ जुड़ जाती हैं।

इस प्रकार चहुँओर दृष्टि डाले तो प्रकृति का हर घटक यही संदेश दे रहा है – चलते रहो, आगे बढ़ते रहो। वैदिक ऋषियों ने ''चरैवेति–चरैवेति' कहा है जीवन गति का नाम है प्रगति है, आगे बढ़ने का नाम ही जीवन है एक क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रहना।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।[4]

मनुष्य होने के नाते तन–मन के थकने पर कुछ पल विश्राम कर सकते हैं लेकिन कर्म पलायन मंजूर नहीं। गीता में कहा है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङोऽस्त्वकर्मणि।।[5]

नदी का एक हिस्सा जब किसी पोखर या तालाब में बंद हो जाता है तो वहाँ विद्रूपता आने लगती है, वहाँ पानी सड़ने लगता है और उसमें से दुर्गन्ध आने लगती है, वह पानी पीने की बात तो दूर नहाने के योग्य भी नहीं रहता है, अतः सदैव प्रकृति गतिशीलता का संदेश देती है, दूसरी ओर कूप का पानी ठहरा हुआ होता है परन्तु वह शीतल होता है और लोगों की प्यास भी बुझाता है, क्योंकि इसमें प्रवाह रहता है जो बाहर दिखता नहीं लेकिन इसकी अन्तर्धाराएं जमीन के अंदर सक्रिय रहती है, जिससे कूप का जल सदैव स्वच्छ–निर्मल बना रहता है। यह सतत गतिशील जीवन की ही महिमा है।

उपनिषद् कहते हैं –

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः''[6]

(इस लोक में शास्त्रोक्त कर्म करते हुये सौ वर्ष की जीने की इच्छा करनी चाहिये।)

अर्थात् शास्त्रोक्त विधि से कर्म करते हुये मनुष्य को सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिये। शास्त्रोक्त कर्म सदैव गतिशील रहने की ही प्रेरणा देते।

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है –

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिणु लोकेषु कि× चन।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।[7]

अर्थात् इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो मुझे प्राप्त न हो फिर भी मैं सदैव कर्म में लगा रहता हूं, क्योंकि सारा संसार मेरी ही सक्रिय गतिशीलता का ही अनुसरण करेगा और यदि मैं निष्क्रिय होकर कार्य नहीं करूं तो सारा संसार उसी का अनुसरण करने लगेगा। अतः सक्रियता के साथ मनुष्य को कर्म करते ही रहना चाहिये।

जीवन का एक–एक क्षण उपयोगी है, संसार में जितने भी महापुरुष हुये हैं वे प्रत्येक क्षण का उपयोग करके ही महान बने हैं।

इस प्रकार प्रकृति, शास्त्र तथा पर्यावरण सभी संयुक्त रूप से मिलकर हमें सदैव कर्म में लगे रहो, इसी भाव को भरते रहते हैं। नदियाँ, समुद्र, वनस्पतियाँ तथा वृक्ष, पशु आदि मनुष्य को ''कर्म करते रहो'' पर उपकार भाव से ऐसा संदेश अपनी प्रवृत्तियों से देते रहते हैं।

II. निष्कर्ष

वर्तमान का परिदृश्य ज्ञान एवं तकनीक की पराकाष्ठा का युग है। प्रत्येक व्यक्ति में होड़महोड़ लगी है। सबमें आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में हम हमारे सनातन मूल्यों को छोड़ रहे हैं। हमारा घोष तो ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' है उसका स्मरण, चिन्तन व अनुसरण आज के समय की मांग है। इसीलिये प्रत्येक मंत्र व शास्त्रों को पुनः ह्रदयंगम कर नवनीत रूप में सबके समक्ष लाना आवश्यक है। इसीलिये ''चरैवेति–चरैवेति'' हमारी संस्कृति का मूल मंत्र इसके अनुस्यूत भाव पर हमें मनन कर मूर्त्त रूप समाज में संचलित करना है। यही इस विषय की गवेषणा है।

इसीलिये जीवन के मर्मज्ञ ऋषियों ने ''चरैवेति–'चरैवेति' अर्थात् चलते रहो–चलते रहो। इसी में जीवन का आनन्द है, जीवन की गति है, जीवन की प्रगति है, जीवन की शांति है, जीवन की सद्गति है और यही जीवन का सार है।

III. संदर्भ

[1] अभि.शाकु. 5/4

[2] षड्दर्शन

[3] महिम्नः स्त्रोत /7/

[4] श्रीमद्भगवत गीता 3/5

[5] श्रीमद्भगवद्गीता 2/47

[6] ईशावास्योपनिषद्/2

[7] श्री मद्भगवतगीता 3/22